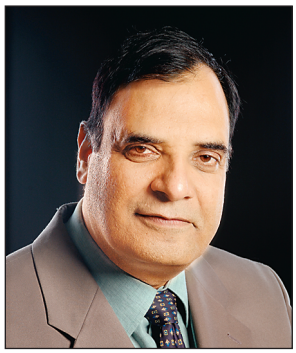

आलोक मेहता

अराजक होने का 'गौरव'

अधिकारों, सुविधाओं के लिए सर्वानुमति बनाने वाले सांसद सदन चलाने के मुद्दे पर एकमत नहीं होते। आपराधिक मुकदमे और निचली अदालत से सजा के बाद सदस्यता खत्म होने संबंधी सुप्रीम कोर्ट के फैसले को बदलने के लिए सभी दलों के सांसदों और सरकार के बची सहमति बन गई। न्यायपालिका को भी एक हद तक अपने प्रभाव में रखने और न्यायाधीशों की आचार संहिता पर जोर देने वाले सांसद अपनी ही आचार संहिता लागू करने को तैयार नहीं हैं। यही नहीं देश में राजनीतिक-आर्थिक निराशा का भयावह वातावरण राजनीतिज्ञ ही बना रहे हैं।

''**यह** किस तरह की गुफ्तगू हो रही है कि साहब, आप अपने जुमले को वापस लें। कोशिश तो यह होती कि हम अपने गिरेहबान में मुंह डालते कि हमने इस संसद का हश्र क्या किया है। हमने इस संसद को कहां ले जाकर खड़ा कर दिया है? इस बात पर बहस के बजाय आपत्ति की जा रही है कि 'अनार्किज्म' (अराजक) कहना सही या गलत था। मुझे अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि सभापतिजी, आपने जो कहा, सही कहा है।''

उपरोक्त टिप्पणी पिछले दिनों राज्य सभा के वरिष्ठ निर्दलीय सांसद मोहम्मद अदीब ने सदन में हंगामे के दौरान की। सभापति (उप राष्ट्रपति) मोहम्मद हामिद अंसारी ने सदन में निरंतर शोरशराबे तथा अव्यवस्था से दुःखी होकर कहा था कि 'क्या आप लोग फेडरेशन ऑफ अनार्किज्म (अराजक महासंघ)' की तरह व्यवहार करना चाहते हैं।' 'अराजक' शब्द को लेकर भारतीय जनता पार्टी तथा कुछ अन्य दलों के नेता उत्तेजित होकर सभापति से यह शब्द वापस लेने की मांग कर रहे थे, जबकि अदीब साहब की तरह डॉ. कर्ण सिंह जैसे कई वरिष्ठ नेता संसद में निरंतर व्यवधान, शोरगुल, अध्यक्ष के आसन के सामने पोस्टर लाने और नारेबाजी की स्थिति को अनुचित ठहराते हुए सदन की गरिमा सुरक्षित रखने पर जोर दे रहे थे। यह पहला अवसर नहीं है, जब राज्य सभा या लोक सभा के अध्यक्ष ने संसद में हंगामे पर बेहद अफसोस के साथ नाराजगी व्यक्त की। लोक सभा के पूर्व अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी भी कई बार इस मुद्दे पर दुःखी होकर गंभीर टिप्पणियां करते रहे हैं। इस बार भी राज्य सभा में सारे नियम-कानून, संसदीय शालीनता- शिष्टाचार का उल्लंघन करने वाले कुछ सांसदों को 'निलंबन' की चेतावनी पर हंगामा हुआ। फिर केवल 'अराजक' शब्द को लेकर प्रतिपक्ष के सांसद भड़क गए। जबकि उप राष्ट्रपति का यह तर्क सही था कि 'अनार्किस्ट' कोई असंसदीय शब्द नहीं है। दुनिया के विभिन्न देशों में 'इंटरनेशनल अनार्किस्ट फेडरेशन' नामक संगठन सक्रिय है। यूरोप में 1968 में यह संगठन स्थापित हुआ। इस संगठन के सदस्य किसी भी तरह की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था-अथार्टी को नहीं स्वीकारते। वे स्वतंत्र-स्वच्छंद सोसाइटी की व्यवस्था में विश्वास करते हैं। लेकिन इस 'अराजक' तंत्र को कहीं व्यापक समर्थन नहीं मिला। भारत में इस समय विभिन्न क्षेत्रों में जिम्मेदार लोग भी अघोषित 'अराजक' स्थितियां बना रहे हैं। सभी नियमों-परंपराओं और संसदीय शिष्टाचार का उल्लंघन करने वाले 'अराजक' तत्व क्या इस व्यवस्था पर 'गौरव' का अनुभव कर सकते हैं? संसद द्वारा स्वयं निर्धारित नियमावली के अनुसार 'किसी सदस्य द्वारा अध्यक्ष के आसन के निकट आकर अथवा सदन में नारे लगाकर या अन्य प्रकार से कार्यवाही में बाधा डालने, घोर अव्यवस्था उत्पन्न किए जाने की स्थिति में अध्यक्ष द्वारा सदस्य का नाम लिए जाने पर वह संसद की पांच बैठकों अथवा सत्र की शेष अवधि के लिए स्वतः निलंबित हो जाएगा।'

सामान्यतः अध्यक्ष इस नियम-परंपरा को कड़ाई से लागू नहीं करते। मैंने तो 1971 से 1974 की अवधि में सोशलिस्ट नेता राजनारायण जैसे सांसदों को संसदीय सुरक्षा गार्ड द्वारा सदन से उठाकर बाहर ले जाने की घटनाएं भी देखी हैं। तब प्रतिपक्ष के सदस्यों की संख्या कम होती थी। लेकिन पिछले दशकों में विरोध पक्ष की संख्या बढ़ने पर नियम-परंपरा अधिक टूटने लगी। संसद की अशोभनीय स्थितियों पर 1992 में प्रतिपक्ष में रहते हुए भी भाजपा के वरिष्ठ नेता अटल बिहारी वाजपेयी ने अपने संसदीय अनुभवों के आधार पर लिखा था- 'संसद में वाद-विवाद कम, शोरशराबा ज्यादा होता है। चुनाव धन शक्ति और गुंडा शक्ति के बड़े पैमाने पर प्रयोग के कारण दूषित हो गए हैं। राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है। लोकतंत्र का बाहरी ढांचा बरकरार है। लेकिन उसे भीतर ही भीतर घुन खाये जा रहा है।' राजनीति में प्रभावशाली रहे ऐसे कई नेता सारे प्रयासों के बावजूद स्थितियां बदल नहीं सके हैं। सता में हो या प्रतिपक्ष में, विरोधियों को नीचा दिखाने के लिए सांसद किसी भी हद तक संसदीय परंपरा का उल्लंघन कर रहे हैं। तेलंगाना मुद्दे पर लगभग दो सप्ताह तक सदन में अशोभनीय व्यवहार किए जाने पर जब संसदीय कार्यमंत्री कमलनाथ ने तेलुगु देशम के चार सदस्यों के साथ सत्तारूढ़ कांग्रेस पार्टी के भी सात सदस्यों के निलंबन का प्रस्ताव रखा, तब भी प्रतिपक्ष ने आपत्ति के साथ हंगामा कर दिया। यह बेहद अजीब सी स्थिति है। मतलब, सदन की गरिमा ताक पर रखकर सदस्यों को मनमाना व्यवहार करने दिया जाए। तभी तो विभिन्न संसदीय क्षेत्रों में कार्यकर्ता या सामान्यजन नेताओं से सवाल करने लगे हैं कि 'आप पार्लियामेंट में जाकर काम क्या करते हैं?' अधिकारों, सुविधाओं के लिए सर्वानुमति बनाने वाले सांसद सदन चलाने के मुद्दे पर एकमत नहीं होते। आपराधिक मुकदमे और निचली अदालत से सजा के बाद सदस्यता खत्म होने संबंधी सुप्रीम कोर्ट के फैसले को बदलने के लिए सभी दलों के सांसदों और सरकार के बची सहमति बन गई। न्यायपालिका को भी एक हद तक अपने प्रभाव में रखने और न्यायाधीशों की आचार संहिता पर जोर देने वाले सांसद अपनी ही आचार संहिता लागू करने को तैयार नहीं हैं। यही नहीं देश में राजनीतिक-आर्थिक निराशा का भयावह वातावरण राजनीतिज्ञ ही बना रहे हैं। निश्चित रूप से इसकी तुलना 1974 के माहौल से की जा सकती है। 25 जुलाई 1974 को लोक सभा में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा था- 'हमेशा यह कहते रहना कि कुछ भी उपलब्ध नहीं हुआ है और देश रसातल की ओर जा रहा है- तथ्यों से आंखें मूद लेना है। अनेक कठिनाइयों और कष्टों के बावजूद देश न तो रसातल की ओर गया है और न यहां कोई बरबादी या अराजकता है। लेकिन दिन-रात ऐसी बातें होने से लोगों का अपनी योग्यता से विश्वास डिगने लगता है।' वर्तमान दौर में भी आर्थिक कठिनाइयां विकराल हुई हैं। लेकिन यदि गुजरात, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, केरल, तमिलनाडु, बिहार, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा में विभिन्न पार्टियों के नेता आर्थिक प्रगति एवं जनता की सामाजिक स्थितियों में सुधार का दावा करते हैं, तो फिर राष्ट्रीय स्तर पर संपूर्ण व्यवस्था के नेस्तनाबूत होने की बात क्यों करते हैं? क्या यह उचित नहीं होगा कि 'अराजक' हुए बिना आशा की डोरी बांधकर सत्ता की दौड़ चलती रहे?

alokmehta7@hotmail.com